आखर हिंदी पत्रिका ; e-ISSN-2583-0597 खंड 3/अंक 5/दिसंबर 2023
Received: 10/12/2023; Accepted: 14/12/2023; Published: 26/12/2023

हमदर्दी की बेतुकी ('मेरे हमदम मेरे दोस्त' कहानी के विशेष संदर्भ में)

- **केसरबेन राजपुरोहित**
अतिथि व्याख्याता, हिंदी विभाग
कन्नूर विश्वविद्यालय
मों. 9207433926
ई मेल- kesarclt@gmail.com

केसरबेन राजपुरोहित, **हमदर्दी की बेतुकी ('मेरे हमदम मेरे दोस्त' कहानी के विशेष संदर्भ में)**, आखर हिंदी पत्रिका, खंड 3/अंक 5/दिसंबर 2023,(516-519)

समकालीन कहानियों में स्त्रियों के जीवन संघर्ष को नई दिशा से रेखांकित किया जा रहा है। लेकिन सच तो यह है कि हकीकत और कागज पर लिखने में अंतर होता है। आज कहानी का स्वरुप बदल रहा है तो स्त्रियों से जुड़े प्रश्न भी बदल रहे हैं। हर स्त्री के जीवन की विडंबना और समस्याएँ अलग हैं। आज की स्त्री पराश्रित बिल्कुल नहीं है। लेकिन सदियों से चली आ रही परंपरा के अनुसार स्त्री का पुरुष के अधीन रहना ही धर्म है। यह कोई नई बात नहीं है कि स्त्री स्वतंत्र रहने की बात करे तो उस पर हजार उँगलियाँ उठाई जाती है। साथ ही हमदर्दी के बहाने उसके दर्द को बढ़ाने की भरपूर कोशिश की जाती है। अल्पना मिश्र की कहानी 'मेरे हमदम मेरे दोस्त' की नायिका सुबोधिनी का जीवन आज की नारी के जीवन से पूर्णत: तादात्म्य स्थापित करता महसूस होता है। सुबोधिनी तलाकशुदा है। एक बेटी है जो उसके साथ ही है। ऑफिस जाते समय उसका पति उसका पीछा करता है, उसे डराता है और बेटी को छीनने की धमकी देता है। इस तरह की परेशानी को पार कर जब देर से ऑफिस पहुँचती है तो वहाँ बाबु उस पर चिल्लाते हैं। एक घंटे की देरी के लिए आधे दिन की छुट्टी लगाने पर मजबूर करते हैं। जब वह आधे दिन की छुट्टी लगाने से इन्कार करती है तो पूरे दिन की छुट्टी लगाने को कहा जाता है। वह मिन्नते करती है तो बाबू कहते हैं, "देखा, देखा! महारानी विक्टोरिया एक घंटा लेट आएँगी और छुट्टी भी नहीं लेंगी!"[1] कहना गलत नहीं होगा कि क्या खूब रवैया है। जहाँ हमदर्दी की जरुरत होती वहाँ हमदर्दी का अर्थ भी समझ में नहीं आता किसी को।

बगल में बैठे गोपाल बाबू उससे हमदर्दी जताने की कोशिश करते हैं। उसके नाम की तारीफ़ करते हुए नाम का मतलब पूछते हैं। लेकिन सुबोधिनी उस पर ध्यान नहीं देती तो वे कुछ ज्यादा ही व्यक्तिगत तरीके से

हमदर्दी जताने की कोशिश करते हुए कहते है, "बच्ची तो आपकी माँ के पास रहती है न! आप डरती हैं, है न! हैरान मत होइए, एक ही जगह काम करते हैं तो एक दूसरे के बारे में जानना फ़र्ज है। फिर अकेले तो आपका मन नहीं लगता होगा? है न! अकेला जीवन भी क्या है? कितना बोर होती होंगी आप!"[2] यहाँ देख सकते है कि किस तरह से शब्दों के द्वारा बेतुकी हमदर्दी जताने की कोशिश की जाती है। और ये आम बात है। सुबोधिनी गोपाल बाबू को अपने काम से काम रखने को कहकर अपने काम में व्यस्त हो जाती है।

एक तरफ शर्मा जी जो हमदर्दी जताते हुए कहते हैं "दिमाग में टेंशन न रखें ईश्वर सब ठीक करेगा।"[3] और दुलार से उसके हाथों को सहलाने की कोशिश करते हैं। वह 'जी' कहकर हाथ हटा देती है। यही है सामाजिक मानसिकता कि एक स्त्री बिना पुरुष के रह ही नहीं सकती। हमदर्दी की आड़ में अपना उल्लु सीधा करने की कोशिश की जाती है।

ऑफिस में भी लोग बातें करते हैं कि "आदमी ने छोड़ दिया है बेचारी को"[4] हकीकत यह थी कि तंग आकर उसने ही छोड़ दिया था। लेकिन इससे क्या फर्क पड़ता है। दोनों ही सूरतों में जिम्मेदार तो उसे ही ठहराया जाएगा। एक पुरुष का साथ स्त्री के जीवन में न हो तो ऐसा अंदाजा लगा दिया जाता है कि उस स्त्री का जीवन अब अर्थविहिन है। क्योंकि ईश्वर ने स्त्री को बनाया ही त्याग, समर्पण और मनोरंजन के लिए है। और ये सब वह स्वयं के लिए नहीं बल्कि पति, परिवार, बच्चों के लिए करेगी तभी उसे महानता की पदवी प्राप्त होगी। अकेली स्त्री जिसे स्वयं को अपने अकेलेपन से कोई फर्क नहीं पडता लेकिन दुनिया की नज़रों मे वह चुभता सितारा बन जाती है। कुछ संकुचित मानसिकता के शिकार हमदर्दी के नाम पर उसे सहारा देने के लिए बेचैन रहते है। महादेवी वर्मा ने सही ही कहा है कि "एक पुरुष के न होने पर न स्त्री के जीवन का कोई उपयोग ही रह जाता है, न समाज या गृह में उसको कहीं निश्चित स्थान ही मिल सकता है। जब जला सकते थे तब इच्छा या अनिच्छा से उसे जीवित ही भस्म करके स्वर्ग में पति के विनोदार्थ भेज देते थे, परंतु अब उसे मृत पति का ऐसा निर्जीव स्मारक बन कर जीना पड़ता है जिसके सम्मुख श्रद्धा से नतमस्तक होना तो दूर रहा कोई उसे मलिन करने की इच्छा भी रोकना नहीं चाहता।"[5]

एक दिन सुबोधिनी ऑफिस जा रही थी तब रास्ते में उसका पति उसे डराता-धमकाता है और बात मारपीट तक पहुँच जाती है। भीड़ जमा हो जाती है। झगडा इतना बढ़ जाता है कि पुलिस भी आ जाती है। तभी बाबू वहाँ से गुजरते हुए सुबोधिनी को देखकर उसके पास जाते हैं। उसकी मदद करते है। साथ में पुलिस स्टेशन भी जाते हैं। और दोनों देर से ऑफिस पहुँचते हैं। बाबु ऑफिस में सबके सामने दिखाते हैं कि उन्होंने सुबोधिनी की बहुत बड़ी मदद की। असल में ऑफिस पहुँचने से पहले ही फोन पर ही घटना का सारा विवरण दे दिया था। ऑफिस पहुँचकर अत्यधिक बढ़ा-चढ़ाकर घटना का बार-बार वर्णन करते हैं। यह व्यवहार सुबोधिनी को अच्छा नहीं लगता। लेकिन कृतज्ञतावश वह सब कुछ नज़र अंदाज करती है। उस दिन सुबोधिनी को आधी छुट्टी नहीं लगाने के लिए कहते हैं। उसकी कुरसी अपने पास लगवा देते हैं। बाबु सबके सामने उससे कहते है, "कहीं कोई दिक्कत हुई थाने में? पूछिए इनसे? कल फिर चलिएगा मेरे साथ। बल्कि मैं तो कहता हूँ कि आप मेरे साथ ही

आएँ जाएँ। किसी की हिम्मत नहीं होगी कि छू सके।"[6] लेकिन सुबोधिनी स्वाभिमानी है। वह अपनी ही जगह जाकर बैठती है। और आधे दिन की छुट्टी भी लगा देती है।

आज स्त्री अगर अपना नाम बना रही है तो वह अपनी काबिलियत और मेहनत के बल पर ही कर रही है। घर के साथ बाहर की दुगुनी जिम्मेदारियाँ बखूबी निभाने की कोशिश कर रही है। फिर समाज स्त्री को कमज़ोर या लाचार समझने की गलती क्यों करता है? यह सोचने की बात है। दूसरी तरफ बात की जाती है स्त्री को सुरक्षा देने की। जब वो अपने ही घर, गली, शहर, देश की सड़कों पर अकेली बेखौफ़ होकर नहीं चल सकती तो सुरक्षित कैसे है वो? और किस तरह की सुरक्षा प्रदान करना चाहता है समाज उसे? ये सारे सवाल भी हैं। लेखन के द्वारा ये सारी बाते उजागर की जाती है तो उसे जजमेंटल तरीके से देखा जाता है। असल में यहाँ जजमेंटल होने की आवश्यकता ही नहीं बल्कि उसे बड़े परिप्रेक्ष्य में देखने की जरुरत है। स्त्री को बेसहारा समझकर उसका सहारा बनने की कोई आवश्यकता नहीं। क्योंकि आधुनिक नारी अपना रास्ता स्वयं बनाना जानती है। लता शर्मा कहती है "यह न चंद्रमुखी है, न पारो! यह तो लक्ष्मीबाई की वंशज है। नन्हें शिशु को पीठ से बांधे जीवन-संग्राम में डटी है। इसने अपने जीवन की लगाम अपने हाथों में ले ली है। किसी का मुँह नहीं जोह रही। किसी से कृपा की याचना नहीं कर रही। अपनी प्रतिभा-क्षमता के बल पर अपना स्थान बना रही हैं।"[7]

आज स्त्री के इर्द-गिर्द लक्ष्मण रेखा खिंचने की आवश्यकता नहीं है। जरुरत है पुरुष वर्ग की सोच और नज़रिये में बदलाव की। उन्हें स्वयं हमदर्दी के बहाने लक्ष्मण रेखा को पार न करने की बात दिमाग में बिठा लेनी चाहिए। इसका मतलब पुरुष और स्त्री के बीच में अलगाव की रेखा खिंचना या बैर उत्पन्न करना बिलकुल नहीं है। बात साफ है गलत मानसिकता का विरोध। दोनों समझदारी से अपनी सीमाओं मे रहकर साथ चले तो मान-अपमान की कोई बात ही नहीं। अनामिका कहती है "स्त्रियों का पुरुषों पर अवलंबन बस उतना ही है, जितना पुरुषों का स्त्रियों पर। पर दोनों अलग-अलग भी अपने आप में पूर्ण और आत्मनिर्भर रहें- यह असंभव नहीं।"[8]

सबसे खास बात यह भी है कि स्त्री स्वयं को ही कमज़ोर समझने की भूल न करे। कोई क्या कहता है यह बड़ी बात नहीं है। जब स्वयं को ही खुद पर भरोसा न हो तो कोई और चाहकर भी सहायता या भला नहीं कर सकता। स्त्री कोमल ज़रुर है, कमज़ोर कभी नहीं। और उसके हृदय की यह कोमलता ही कभीकभार उसकी कमज़ोरी भी बन जाती है। जिसका फायदा उठाने से कोई चुकना नही चाहता। और फिर स्वयं ही दु:खी हो जाती है। स्वामी विवेकानंदजी ने कहा है, "नारी मन को आहत होने के लिए आधार से अधिक अपनी शंका से सहायता मिलती है।"[9]

निष्कर्ष:

नारी की कोमल भावनाओं को आहत करने की कोशिश बार-बार की जाती है। खासकर हमदर्दी जताने के बहाने। वह भी बेतुकी अर्थात् बिना अर्थ की, बिना किसी भावना की असंगत हमदर्दी। अकेली स्त्री आज के समय में भी समाज की नज़रों में अबला और लाचार ही है। सबसे पहले इस सोच को ही बदलने की आवश्यकता

है। स्त्री-पुरुष दोनों मिलकर साथ चलेंगे तो अच्छा ही होगा। लेकिन अगर किसी का भी फायदा उठाने का खयाल जब घर करेगा तो निश्चित ही उसका परिणाम सही नहीं होगा। ऐसा भी नहीं है कि हर कोई फायदा उठाने की कोशिश करे। इंसानियत आज भी जिंदा है। जो गिने-चुने प्रदूषण है उन्हें अपना मानसिकता में सुधार करने की आवश्यकता है। स्त्री को पुरुष का बराबरी का साथ मिले तो सफर सुहाना हो सकता है। लेकिन हमदर्दी के नाम पर छलावा स्त्री को आहत ही करेगा। संकल्प की आवश्यकता है कि हमदर्दी विसंगत न हो।

संदर्भ ग्रंथ सामग्री:

1. अल्पना मिश्र, (2012).कब्र भी क़ैद औ ' जंजीरें भी. नई दिल्ली: राजकमल प्रकाशन. पृ.सं 80
2. अल्पना मिश्र, (2012).कब्र भी क़ैद औ ' जंजीरें भी. नई दिल्ली: राजकमल प्रकाशन. पृ.सं 82
3. अल्पना मिश्र, (2012).कब्र भी क़ैद औ ' जंजीरें भी. नई दिल्ली: राजकमल प्रकाशन. पृ.सं 82
4. अल्पना मिश्र, (2012).कब्र भी क़ैद औ ' जंजीरें भी. नई दिल्ली: राजकमल प्रकाशन. पृ.सं 81
5. महादेवी वर्मा, (2008). श्रृंखला की कड़ियाँ. इलाहाबाद: लोकभारती प्रकाशन. पृ.सं 20
6. अल्पना मिश्र, (2012).कब्र भी क़ैद औ ' जंजीरें भी. नई दिल्ली: राजकमल प्रकाशन. पृ.सं 86
7. लता शर्मा, (2019). औरत: अपने लिए. नई दिल्ली: सामयिक प्रकाशन. पृ.सं 12
8. अनामिका, (2012). स्त्री-विमर्श का लोकपक्ष. नई दिल्ली: वाणी प्रकाशन. पृ.सं 196
9. एम.आई. राजस्वी, (2019). विश्वगुरु विवेकानंद. नई दिल्ली: प्रकाश बुक्स इंडिया प्राइवेट लिमिटेड. पृ.सं 20

****